आचार्य पूज्यपाद कृत

इष्टोपदेश

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 14

Ācārya Pūjyapāda's

IṢṬOPADEŚA

Translated by
Dr. Jaykumar Jalaj

Edited by
Manish Modi

Hindi Granth Karyalay
Mumbai, 2007

ॐ

पण्डित नाथूराम प्रेमी रिसर्च सिरीज़ वॉल्यूम १४

आचार्य पूज्यपाद कृत

इष्टोपदेश

हिन्दी अनुवाद

डॉ. जयकुमार जलज

सम्पादन

मनीष मोदी

हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय

मुम्बई, २००७

"Iṣṭopadeśa"
By Ācārya Pūjyapāda
Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 14
Hindi translation by Dr. Jaykumar Jalaj
Edited by Manish Modi
Mumbai: Hindi Granth Karyalay, 2007
ISBN 978-81-88769-23-0 (pb)

HINDI GRANTH KARYALAY
Publishers Since 1912
9 Hirabaug, C P Tank,
Mumbai 400004. INDIA
Phone: + 91 (022) 2382 6739, 2062 2600
Email: gommateshvara@gmail.com
Web: www.hindibooks.8m.com
Blog: http://hindigranthkaryalay.blogspot.com
Yahoogroup: http://groups.yahoo.com/group/Hindibooks
Yahoogroup: http://groups.yahoo.com/group/JainandIndology

First Edition: 2007
© Hindi Granth Karyalay

Cover design by AQUARIO DESIGNS
Email : smritajain@gmail.com

Library of Congress Cataloging in Publication Data

Pūjyapāda

Title : Iṣṭopadeśa; tr. by Jaykumar Jalaj
I. Jainism II. Title
III. Series: Pandit Nathuram Premi Research Series; 14
294.4 - dc22

Price: Rs. 20/-

Printed in India

प्रस्तावना

ईसा की पाँचवीं सदी में कर्नाटक प्रदेश के कोले नामक गाँव में श्रीदेवी और माधवभट्ट नामक माता-पिता से जन्मे पूज्यपाद का प्राथमिक नाम देवनन्दी था। बुद्धि की प्रखरता और प्रकर्ष के कारण शीघ्र ही उनका नाम जिनेन्द्रबुद्धि पड़ गया। कहा जाता है कि सर्प के मुँह में फँसे मेढक को देखकर उन्हें वैराग्य हुआ और उन्होंने जिनधर्म ही नहीं जिनदीक्षा भी ग्रहण कर ली। देवता उनके चरण पूजते हैं, इस जनविश्वास ने जिनेन्द्रबुद्धि को आगे चलकर पूज्यपाद के नाम से विख्यात कर दिया।

आचार्य पूज्यपाद का समय कुन्दकुन्द और समन्तभद्र के बाद का है। उन दोनों के प्रभाव पूज्यपाद की रचनाओं में लक्षित होते हैं। पूज्यपाद ने अपनी बहुमुखी रचनाशीलता के चलते व्याकरण, छन्दशास्त्र, वैद्यक जैसे विषयों पर भी लिखा। उनके जिनेन्द्र व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र नामक ग्रन्थों को भरपूर प्रसिद्धि मिली।

इष्टोपदेश ५१ श्लोकों की एक संक्षिप्त कृति है। आचार्य पूज्यपाद इसमें बहुत स्नेह से हमारा ध्यान जीवन की आध्यात्मिक और बुनियादी ज़रूरतों की ओर आकर्षित करते हैं। अपने (स्व-भाव) और पराए (पर-भाव), ज़रूरी और ग़ैरज़रूरी में फ़र्क़ करने की उनकी दृष्टि एकदम साफ़ है। उनका कथन है - जीव यानी आत्मा और पुद्गल यानी शरीर को अलग-अलग समझना ही बुनियादी बात है। इसके अलावा जो भी कुछ और कहा जाता है वह इसी बुनियादी बात का विस्तार है। वे दान, त्याग, व्रतों आदि का विरोध नहीं करते । पर उन्हें एक ऐसे रास्ते के रूप में निरूपित करते हैं जो हमें सिर्फ़ थोड़ी ही दूर ले जाने में समर्थ है। वह हमें अधिक से अधिक स्वर्ग तक ले जाकर छोड़ देता है। इसके विपरीत आत्मभाव में स्थिर और केन्द्रित होने की स्थिति हमें मोक्ष तक ले जाती है। मोक्ष ही पूज्यपाद का लक्ष्य और गन्तव्य है। इसी की संस्तुति वे तमाम प्राणियों से करते हैं।

आज हम विकासदर और उपभोक्तावाद के फेर में अधिकाधिक धन कमाने के चक्कर में हैं। सोचते हैं कि त्याग और दान करेंगे, इसलिए भरपूर धन कमाया जाय। ऐसे लोगों को पूज्यपाद की मित्रवत् समझाइश है कि यह तो ऐसा ही है कि चूंकि स्नान करेंगे इसलिए शरीर पर कीचड़ लपेट लिया जाय। पूज्यपाद की दृष्टि तात्कालिक पर नहीं चिरन्तन और सनातन पर है। उनका समूचा चिन्तन पन्थ निरपेक्ष है। हम समझते हैं, उपभोगों की अति से मनुष्य जाति बहुत शीघ्र थक जाएगी और तब हमें पूज्यपाद की दृष्टि की ज़रूरत महसूस होगी।

पूज्यपाद संक्षिप्ति और कसावट के रचनाकार हैं। उनकी कृतियाँ लघुकाय हैं और हर श्लोक स्फीति से मुक्त है। श्लोकों में ऐसा एक शब्द ढूँढ़ना भी कठिन है जो ग़ैरज़रूरी हो। उनके यहाँ मात्रा या वर्ण की ज़रूरत के लिए भी भर्ती के शब्द नहीं हैं।

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं पूज्यपाद की रचना समाधितन्त्र और इष्टोपदेश को हिन्दी में अनूदित कर सका। कोशिश की है कि पाठक अनुवाद के माध्यम से सीधे-सीधे पूज्यपाद तक पहुँच सकें। मेरा उद्देश्य मूल रचना को बिना किसी हस्तक्षेप के हिन्दी में प्रस्तुत करने का ही रहा है। अनुवाद करते वक़्त मुझे सदैव यह अहसास रहा है कि हस्तक्षेप करने की अपेक्षा हस्तक्षेप न करना ज़्यादा कठिन काम है।

जयकुमार जलज

30 इन्दिरा नगर
रतलाम
457001
मध्य प्रदेश

दूरभाष : 07412-404208, 0-98936 35222
E-mail : jaykumarjalaj@yahoo.com

प्रकाशकीय

हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय के लिए इष्टोपदेश का यह अनुवाद रत्नकरण्ड श्रावकाचार, समाधितन्त्र, अट्ठपाहुड, परमात्मप्रकाश, तत्त्वार्थसूत्र (प्रभाचन्द्र) ध्यानशतक, योगसार, ध्यानस्तव के अनुवाद की तरह ही हमारे विशेष अनुरोध पर ख्यात साहित्यकार डॉ. जयकुमार जलज ने किया है, मध्यप्रदेश शासन द्वारा भगवान महावीर के २६०० वें जन्मोत्सव पर लिखाई गई और उसी के द्वारा प्रकाशित जिनकी पुस्तक भगवान् महावीर का बुनियादी चिन्तन अल्प समय में ही पन्द्रह संस्करणों और अनेक भाषाओं में अपने अनुवादों तथा उनके भी संस्करणों के साथ पाठकों का कण्ठहार बनी हुई है।

पण्डित नाथूराम प्रेमी रिसर्च सिरीज़ के तहत प्रकाशित उक्त सभी अनुवादों की तरह इष्टोपदेश का यह अनुवाद भी मूल रचना का अनुगामी है। इसमें भी कहीं भी अपने पाण्डित्य का हौआ खड़ा करने का तत्त्व नहीं है। शब्दप्रयोग के स्तर पर ही नहीं वाक्यसंरचना के स्तर पर भी यह बेहद सहज और ग्राह्य है। ग़ैरज़रूरी से परहेज़ इसका ध्येय वाक्य है। इसलिए अनुवाद में मूल भाषा के दबाव से मुक्त एक ऐसी सरल भाषा का इस्तेमाल है जैसी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के हिन्दी अनुवादों में साधारणतः प्रयुक्त नहीं मिलती। यह अनुवाद आतंकित किए बिना सिर्फ़ वहीं तक साथ चलता है जहाँ तक ज़रूरी है और फिर आत्मसाधना के इस स्थितप्रज्ञ ग्रन्थ (इष्टोपदेश) का सहज सान्निध्य पाठक को सौंपता हुआ नेपथ्य में चला जाता है।

मूल संस्कृत श्लोक को पर्याप्त मोटे फ़ॉण्ट में और उसके हिन्दी अनुवाद को उससे कम पॉइण्ट के फ़ॉण्ट में मुद्रित किया गया है। इससे ग्रन्थ को पढ़ना सुगम बना रहेगा। सिरीज़ की अन्य कृतियों की तरह ही इसके काग़ज़, मुद्रण, मुखपृष्ठ और प्रस्तुति को भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर का बनाए रखने की चेष्टा की गई है। यह भी ध्यान रखा गया है कि मूलश्लोक के ठीक नीचे उसी पृष्ठ पर उसका अनुवाद मुद्रित हो ताकि पाठक को अनुवाद पढ़ने के लिए पृष्ठ न पलटना पड़े।

यशोधर मोदी

आचार्य पूज्यपाद कृत

इष्टोपदेश

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै सञ्ज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ।।१।।

मैं (पूज्यपाद) केवलज्ञान स्वरूप उन परमात्मा को नमन करता हूँ जिन्हें ख़ुद के सभी कर्मों का नाश हो जाने पर अपने आप ही स्व-भाव की प्राप्ति हो गई है।

योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ।।२।।

योग्य उपादान होने से स्वर्ण-पाषाण स्वर्ण बन जाता है । इसी तरह स्व-द्रव्य (स्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) आदि उपादान हों तो आत्मा भी परमात्मा बन जाती है।

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्बत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान् ।।३।।

व्रतों का पालन करके स्वर्ग पाना श्रेष्ठ है। अव्रतों के कारण नरक में जाना श्रेष्ठ नहीं है। व्रत-अव्रत के परिपालकों में उतना ही बड़ा अन्तर है जितना छाया और धूप में अवस्थित व्यक्तियों में।

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद् दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति ?।।४।।

आत्मा के जो भाव मोक्ष प्रदान करने में सक्षम हैं उनसे स्वर्ग मिलना तो मामूली बात है। जो व्यक्ति किसी वज़न को दो कोस तक झटपट ले जा सकता है वह भला उसे आधे कोस तक ले जाने में क्या खेद मानेगा ?

हृषीकजमनातङ्कं दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।।५।।

स्वर्ग में देवताओं को पाँच इन्द्रियों से जो निश्चिन्त और अबाध सुख मिलता है वह उन देवताओं की तरह ही दीर्घजीवी होता है।

वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथाह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।।६।।

सांसारिक व्यक्ति तो उन इन्द्रिय सुखों की सिर्फ़ कल्पना ही कर सकता है। फिर विपत्ति के समय वे उसे रोग के समान दुःखी भी करते हैं।

मोहेन संवृतं ज्ञान, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।।७।।

नशीले कोदों से उन्मत्त हुए व्यक्ति को पदार्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं होता । इसी तरह मोह से आच्छादित ज्ञान को स्व-भाव की उपलब्धि नहीं होती।

वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते ।।८।।

शरीर, धन, पत्नी, पुत्र, मित्र, शत्रु आदि हर दृष्टि से पर-भाव वाले हैं। लेकिन अज्ञानी व्यक्ति इन्हें अपना समझता है।

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ।।९।।

देशों और दिशाओं से आकर पक्षी पेड़ों पर बसेरा करते हैं और सुबह होते ही अपने-अपने काम से फिर देशों और दिशाओं में उड़ जाते हैं।

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ।।१०।।

अपकार करनेवाले और मारनेवाले व्यक्ति के प्रति क्रोध करना व्यर्थ है, क्योंकि फावड़े से भूमि को खोदने की चेष्टा में मनुष्य को खुद भी पैरों से झुकने के लिए विवश होना पड़ता है।

रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ।।११।।

संसारी जीव राग-द्वेष रूपी दो रस्सियों से कर्मों को खींचता है और अज्ञान के कारण संसार रूपी समुद्र में लम्बे समय तक भटकता रहता है।

विपद्रवपदावर्ते, पदिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुरा विपदः पुरः ।।१२।।

संसार में मुसीबतें रहँट की घड़ियों की तरह होती हैं। जब तक एक ख़त्म (खाली) होती है तब तक दूसरी कई आकर खड़ी हो जाती हैं।

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा ।।१३।।

कठिनाई से अर्जित होनेवाली और असुरक्षित रहनेवाली नश्वर सम्पत्तियों में सुख का अनुभव करना वैसा ही है जैसे बुख़ार में पड़ा कोई व्यक्ति घी पीने में स्वास्थ्य को तलाशने की कोशिश करे।

विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमानमृगाकीर्णवनान्तरतरुस्थवत् ।।१४।।

जंगली जानवरों से भरे और जलते हुए जंगल में किसी पेड़ पर बैठे व्यक्ति की तरह ही अज्ञानी व्यक्ति दूसरों की विपत्ति को तो देखता है अपनी विपत्ति को नहीं देखता।

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम् ।।१५।।

धनवान व्यक्ति यह तो मानते हैं कि धन की वृद्धि आयु बीतने और समय गुज़रने के साथ ही होती है। फिर भी उन्हें धन अपने जीवन से ज़्यादा प्यारा लगता है।

त्यागाय श्रेयते वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति।।१६।।

जो व्यक्ति त्याग (और दान) करने के लिए धन जोड़ने में लगा हुआ है वह इस विचार से कि स्नान करूँगा, अपने शरीर पर कीचड़ लपेट रहा है।

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः।।१७।।

भोगविलास शुरू में सन्ताप देते हैं और अतृप्ति को बढ़ाते हैं। अन्त में उन्हें छोड़ना भी मुश्किल हो जाता है। कौन बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे भोगविलास का सेवन करेगा ?

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा।।१८।।

जिस शरीर के संसर्ग से पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं और जो नश्वर भी है भला कौन ऐसे शरीर की कामना करेगा ?

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।१९।।

आत्मा का उपकारक देह का अपकारक होता है और देह का उपकारक आत्मा का अपकार करता है।

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ।।२०।।

संसार में अलौकिक चिन्तामणि है और खली के टुकड़े भी हैं। अगर दोनों को ही प्राप्त करने का साधन ध्यान हो तो बुद्धिमान व्यक्ति किसे प्राप्त करना चाहेगा ?

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः ।।२१।।

आत्मा आत्मानुभव द्वारा गम्य है। शरीरप्रमाण है। अविनाशी है। अनन्त सुख से सम्पन्न है और लोकालोक को देखने में समर्थ है।

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्।।२२।।

मनुष्य को चाहिए कि वह इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन को एकाग्र करे और अपनी आत्मा में स्थित होकर आत्मा के द्वारा ही आत्मा का ध्यान करे।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः ।।२३।।

अज्ञानी की उपासना (आश्रय) से अज्ञान और ज्ञानी की उपासना से ज्ञान मिलता है। यह कथन प्रसिद्ध ही है कि जिसके पास जो होगा वही तो वह देगा।

परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा ।।२४।।

अध्यात्म योग में लीन व्यक्ति को परिषह नहीं झेलने पड़ते। फलस्वरूप उसे नये कर्मों का बन्ध नहीं होता और उसके पुराने कर्मों की निर्जरा भी शीघ्र हो जाती है।

कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, सम्बन्धः कीदृशस्तदाः ।।२५।।

मैं चटाई बनानेवाला हूँ – इस प्रकार दो पदार्थों में कर्त्ता-कर्म का एक सम्बन्ध होता है। लेकिन जहाँ आत्मा ही ध्यान और ध्येय हो वहाँ कैसा, क्या सम्बन्ध ?

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ।।२६।।

ममत्व जीव को कर्मों के बन्धन में बाँधता है। ग़ैरममत्व (मेरेपन का अभाव, अममत्व) उसे उनसे मुक्त करता है। इसलिए हमारा हर क़दम ग़ैरममत्व की दिशा में ही उठना चाहिए।

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ।।२७।।

मैं (आत्मा) एक हूँ। मेरेपन से रहित हूँ। शुद्ध और ज्ञानी हूँ। योगी ही मुझे जान सकते हैं। संयोगों से उत्पन्न होनेवाले विभिन्न सम्बन्ध मेरी दुनिया से बाहर हैं।

दुःखसन्दोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२८॥

यहाँ संयोग सम्बन्ध के कारण ही सांसारिक प्राणियों को दुःखसमूह से गुज़रना पड़ता है। इसलिए मैं सभी संयोग सम्बन्धों को मन, वचन, काय से सर्वथा छोड़ता हूँ।

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले॥२९॥

मेरा (आत्मा का) मरण नहीं होता। इसलिए मेरे डरने का सवाल ही नहीं। मुझे कोई रोग नहीं होता। इसलिए मेरे वेदना सहने का भी सवाल नहीं। मैं न बच्चा हूँ, न युवा हूँ और न बूढ़ा हूँ। ये सब तो पुद्गल के विषय हैं।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥३०॥

विभिन्न पुद्गलों को मैं मोहपूर्वक बार-बार भोगता रहा। ज्ञान हुआ तो सभी को छोड़ दिया। अब जूठन के समान उन पुद्गलों की भला क्या लालसा मुझ ज्ञानी को होगी ?

कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥३१॥

कर्म अपना हित कर्म को बाँधने में और जीव (आत्मा) अपना हित जीव (आत्मा) का हित करने में देखता है। प्रभावी होने पर सब अपनों का ही तो हित देखते हैं।

परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत्।।३२।।

आत्मा से इतर यह जो दिखाई देनेवाली दुनिया है अज्ञानी प्राणी इसी पर (इतर, पराए) के उपकार में लगा रहता है। वस्तुतः इसे छोड़कर आत्मा का उपकार करने में तत्पर होना चाहिए।

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।।३३।।

गुरु के उपदेश, अभ्यास अथवा आत्मज्ञान से जो स्व और पर के अन्तर को समझता है दरअसल वही मोक्ष के सुख को समझता है।

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।।३४।।

आत्मा के भीतर ही आत्मा को जानने की श्रेष्ठ इच्छा पैदा होती है। आत्मा ही अपनी प्रिय आत्मा को जानने की सच्ची पात्र है और आत्मा ही स्वयं अपने हित को प्रयोग में लाती है। इसलिए आत्मा ही आत्मा की गुरु है।

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्।।३५।।

अज्ञानी ज्ञानी में और ज्ञानी अज्ञानी में रूपान्तरित नहीं होता। गति के मामले में जैसे धर्म द्रव्य निमित्त है वैसे ही ज्ञान के मामले में अन्य व्यक्ति (गुरु आदि) भी निमित्त मात्र हैं।

अभवच्चित्तविक्षेपः, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः ।।३६।।

योगी को चाहिए कि चित्त में क्षोभ न रखे, तत्त्वचिन्तन में एकाग्र रहे, आलस्य का त्याग करे और एकान्त में अपने आत्मतत्त्व का ध्यान करता रहे।

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।।३७।।

ज्यों ज्यों आत्मज्ञान में श्रेष्ठता बढ़ती है त्यों त्यों भोगविलास, भले ही वे एकदम सुलभ हों, अच्छे नहीं लगते।

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।।३८।।

ज्यों ज्यों भोगविलास अच्छे नहीं लगते त्यों त्यों आत्मज्ञान में श्रेष्ठता बढ़ती है।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।।३९।।

जब सारा संसार इन्द्रजाल की तरह (निःसार) दिखाई देने लगता है तब आत्मस्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा होती है। वैसे में मन अगर किसी दूसरे विषय की ओर जाता है तो अनुताप होता है।

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।।४०।।

श्रेष्ठ व्यक्ति एकान्त पसन्द करते हैं। एकान्त पाकर खुश होते हैं। वे अपने किसी काम के लिए किसी से भी नहीं कहते। अगर कभी कहना ही पड़ जाय तो कहे हुए को याद नहीं रखे रहते।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।४१।।

आत्म तत्त्व में अवस्थित व्यक्ति बोलता हुआ भी नहीं बोलता, चलता हुआ भी नहीं चलता और देखता हुआ भी नहीं देखता।

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः।।४२।।

आत्मध्यान में लीन व्यक्ति यह क्या है, कैसा, किसका, कहाँ और किस वजह से है ऐसी जिज्ञासाओं में नहीं पड़ता। दरअसल उसे तो अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती।

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।४३।।

जो जिस जगह रहता है वह उस जगह में रम जाता है और जो जिस जगह में रम जाता है वह उसे छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाता। [आत्मा में रमा हुआ व्यक्ति भी ऐसा ही होता है।]

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।।४४।।

आत्मा में रमा हुआ व्यक्ति इतर पदार्थों की विशेषताओं को नहीं जानता। इस मामले में वह अज्ञानी होता है। लेकिन अपने इस अज्ञान से वह कर्मों के बन्धन में बँधता नहीं बल्कि छूट जाता है।

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।।४५।।

पर पदार्थ पर (पराए) हैं। इसलिए दुःख देते हैं। आत्मा ही अपनी है। इसलिए सुख देती है। इसीलिए तो तमाम महापुरुष आत्मा को ही पाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।।४६।।

जो अज्ञानी व्यक्ति पुद्गल द्रव्य का अभिनन्दन करता है पुद्गल द्रव्य उसका साथ चार गतियों में भी नहीं छोड़ता।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिःस्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः।।४७।।

आत्मध्यान में लीन योगी व्यवहार की दुनिया में भले ही अजनबी हो जाता हो पर योग से उसे अपूर्व आनन्द मिलता है।

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दु:खेष्वचेतन: ।।४८।।

आत्मध्यान में लीन होने का आनन्द योगी के कर्म-ईंधन को निरन्तर जलाकर भस्म करता रहता है। वह योगी बाहरी दु:खों से अनभिज्ञ रहता है और कभी दु:खी नहीं होता।

अविद्याभिदुरं ज्योति:, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभि: ।।४९।।

अज्ञान का नाश करनेवाला आत्मा का श्रेष्ठ प्रकाश परम ज्ञानमय है। मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को उस प्रकाश की ही तलाश होनी चाहिए, उसे ही पाने का प्रयत्न करना चाहिए और उसके ही दर्शन करने चाहिए।

जीवोऽन्य: पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसङ्ग्रह: ।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तर: ।।५०।।

जीव (आत्मा) और पुद्गल को अलग-अलग समझना ही मूल बात है। इसके अलावा जो भी कुछ और कहा जाता है वह इसी बुनियादी बात का विस्तार है।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्य: ।।५१।।

बुद्धिमान और भव्य व्यक्ति इस इष्टोपदेश ग्रन्थ को भलीभाँति पढ़कर मान-अपमान के बीच समता भाव को जगह देते हैं। फिर वे बस्ती में रहें या जंगल में, उन्हें मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

परिशिष्ट

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लोक नं.
अ	
अगच्छंस्तद्विशेषाणाम्	४४
अज्ञानोपास्तिरज्ञानं	२३
अभवच्चित्तविक्षेपः	३६
अविद्याभिदुरं ज्योतिः	४९
अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं	४६
आ	
आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य	४७
आनन्दो निर्दहत्युद्धं	४८
आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं	१५
आरम्भे तापकान्प्राप्ताव	१७
इ	
इच्छत्येकान्तसंवासं	४०
इतश्चिन्तामणिर्दिव्य	२०
इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य	५१
ए	
एकोऽहं निर्ममः शुद्धो	२७
क	
कटस्य कर्त्ताहमिति	२५
कर्म कर्महिताबन्धि	३१
किमिदं कीदृशं कस्य	४२
ग	
गुरूपदेशादभ्यासात्	३३
ज	
जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य	५०
त	
त्यागाय श्रेयसे वित्तम्	१६
द	
दिग्देशेभ्यः खगा एत्य	९
दुःखसन्दोहभागित्वं	२८
दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण	१३
न	
न मे मृत्युः कुतो भीतिः	२९

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति ३५
निशामयति निश्शेष ३९

प

परः परस्ततो दुःख् ४५
परीषहाद्यविज्ञानादा २४
परोपकृतिमुत्सृज्य ३२

ब

बध्यते मुच्यते जीवः २६
ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते ४१

भ

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गं १८
भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान् ३०

म

मोहेन संवृतं ज्ञान ७

य

यज्जीवस्योपकाराय १९
यत्र भावः शिवं दत्ते ४
यथा यथा न रोचन्ते ३८
यथा यथा समायाति ३७
यस्य स्वयं स्वभावाप्ति १
योग्योपादानयोगेन २
यो यत्र निवसन्नास्ते ४३

र

रागद्वेषद्वयीदीर्घ ११

व

वपुर्गृहं धनं दारा ८
वरं व्रतैः पदं दैवं ३
वासनामात्रमेवैतत् ६
विपत्तिमात्मनो मूढः १४
विपद्भवपदावर्ते १२
विराधकः कथं हन्त्रे १०

स

संयम्य करणग्रामं २२
स्वसंवेदनसुव्यक्त २१
स्वस्मिन् सदभिलाषि ३४

ह

हृषीकजमनातङ्कं ५

जैं

हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय

Recent Publications by Hindi Granth Karyalay

Jaya Gommateṣa
By Bal Patil
Foreword by Prof Dr Collette Caillat
2006 Softcover Rs. 100/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 1
Jaina Studies: Present State and Future Tasks
By Prof Dr Ludwig Alsdorf
Edited by Prof Dr Willem B. Bollée
2006 Hardcover Rs. 395/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 2
The Story of Paesi
By Prof Dr Willem B. Bollée
2005 Hardcover Rs. 795/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 3
रत्नकरण्ड श्रावकाचार
आचार्य समन्तभद्र कृत
हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज
प्राक्कथन : पॉल डण्डस
2006 Softcover Rs 40/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 4
Vyavahāra Bhāṣya Pīṭhikā
By Prof Dr Willem B. Bollée
Preface by Dr Piotr Balcerowicz
2006 Softcover Rs 400/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 5

समाधितन्त्र

आचार्य पूज्यपाद कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2006 Softcover Rs 30/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 6

अट्ठपाहुड

आचार्य कुन्दकुन्द कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2007 Softcover Rs. 100/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 8

योगामृत : योग सहज जीवन विज्ञान

योगाचार्य महावीर सैनिक

2006 Hardcover Rs. 120/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 9

परमात्मप्रकाश

आचार्य जोइन्दु कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2007 Softcover Rs 60/-

Religious Ethics: A Sourcebook

By Prof Dr Arthur B. Dobrin

2004 Hardcover Rs. 495/-

Good for Business: Ethics in the Marketplace

By Prof Dr Arthur B. Dobrin

2006 Hardcover Rs. 250/-

The Lost Art of Happiness

By Prof Dr Arthur B. Dobrin

2006 Softcover Rs. 250/-

Nava Smaraṇa

By Vinod Kapashi

Edited by Signe Kirde

2007 Hardcover Rs. 800/-

Forthcoming Publications by Hindi Granth Karyalay

जैन साहित्य और इतिहास

पण्डित नाथूराम प्रेमी कृत

प्रस्तावना : प्रो. ए. एन. उपाध्ये

प्राक्कथन : पॉल डण्डस

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 7

तत्त्वार्थसूत्र

आचार्य प्रभाचन्द्र कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

प्रस्तावना : प्रो. नलिनी बलबीर

2006 Softcover

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 10

योगसार

आचार्य जोइन्दु कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2007 Softcover Rs 30/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 11

ध्यानस्तव

आचार्य भास्करनन्दि कृत

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2007 Softcover Rs 30/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 12

ध्यानशतक

हिन्दी अनुवाद : डॉ. जयकुमार जलज

2007 Softcover Rs 30/-

Pandit Nathuram Premi Research Series Volume 13

बारस अणुवेक्खा

आचार्य कुन्दकुन्द कृत

संस्कृत पद्यानुवाद एवं हिन्दी गद्यानुवाद : पण्डित नाथूराम प्रेमी

2007 Softcover Rs 40/-

ISBN 818876923-1
9788188769230 50250>

For more information please visit
www.hindibooks.8m.com